III

□ घर

○ अरुणेश नीरन

घर छूट गया था पीछे
चूने-गारे से बना हुआ
अपनों का घर
सपनों का घर
सोने-लोहे का उनका घर
मेरा उनका वह तिनका घर

उस पहाड़ी स्टेशन पर
चीड़-वनों से होता होता
पर्वत पर छंदों-सा खिलता
हिरनों-सा वह चंचल घर
ताल-वनों से सजता घर

जब अधरों पर उगते घर
जब बाँहों में जगते घर
महानिशा के अंधकार में
दीपक-से जब जलते घर

जब सपनों में बनते घर
अपनों जैसे लगते घर
ऋतुओं संग रहते रहते
सब ऋतुओं से बाहर घर

पारे जैसे पंखों से
पारे से पारे को धोता
सजल-अचल के दूर्वा-दल में
पारे जैसा चंचल घर

चुप-चरनों से गया वहाँ मैं
पाताल-पतित सब खाइयों को भेद कर
बादल-मादल की वृंदगान में
घन से उतरा वह
कमल-कुंज को छेद कर

→

इसी ओर आ रहा था
वह वनपाँखी

आ रहा था ऐसे
जीवन के धुँधले क्षितिज से
जैसे कोई एक तारा उछाल दे
या शरद की कँपकँपाती भोर के
सूखे अणों के कुण्ड में
दिव्य आहुति डाल दे

घर छूट गया था पीछे
सुख-दुःख के कच्चे धागों से
बुना हुआ घर
रुई के बादल में अब
सूरज की धुनकी से
धुना हुआ था घर

हिमशिखरों के घर घर में
मेघराग को रचते बादल
घाटी में उतरे नील गगन की
सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ते बादल

उस घर में देखा तुमको
जैसे झरने का पहला गाना हो
ओस-कणों पर पाँव-धरे
सोने का सूरज आना हो

घर के भीतर घर उतरा
उसमें नील गगन उतरा
उषा उतरी संध्या उतरी
पर्वत उतरे घाटी उतरी

पक्षी उतरे नदियाँ उतरीं
पल भर में सब सदियाँ उतरीं
जंगल उतरे झीलें उतरीं
बारी-बारी चीलें उतरीं

→

घर को उनसे बुनते बुनते
किरणें लौट गयीं सब घर को
हम खोज रहे हैं कबसे
कुहरे में खोये
उस कुहरे के घर को !

□□